आचार्य मुनि श्रीजिनविजयजी

वैशालीनायक चेटक और सिंधुसौवीर का राजा उदायन

[विक्रम संवत् १९७९ में आचार्य श्री जिनविजयजी ने 'पुरातत्त्व' पु० १ अं० ३ में 'वैशालीना गणसत्ताक राज्यनो नायक राजा चेटक' नामक लेख लिखवाना प्रारम्भ किया था. समग्र लेख एक पुस्तक ही बन जाता और तत्कालीन राजनैतिक इतिहास पर जैन-बौद्ध साहित्यिक सामग्री से नया प्रकाश पड़ता किन्तु दुर्भाग्य से वह अधूरा ही रह गया. फिर भी इसमें चेटक और उदायन के सम्बन्ध में नया प्रकाश उपलब्ध होता है और आज ४१ वर्ष के बाद भी वह लेख नवीन मालूम होता है अतएव हम उसका हिन्दी अनुवाद यहाँ दे रहे हैं.—**सम्पादक**]

जैन-साहित्य में वैशाली के राजा चेटक का नाम कई प्रकारों से प्रसिद्ध है. महावीर के धर्म का महान् उपासक होने मात्र से ही यह प्रसिद्ध नहीं था किन्तु कई अन्य व्यावहारिक प्रसंगों से भी इसकी प्रसिद्धि थी. इसकी प्रसिद्धि के कई कारणों में पहला कारण यह था कि इसका महावीर के वंश के साथ दो प्रकार का संबंध था. एक महावीर की माता त्रिशला इसकी बहन होती थी और दूसरा महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्धन की पत्नी, जिसका नाम ज्येष्ठा था, इसकी पुत्री थी. जिस प्रकार महावीर के वंश के साथ इसका कौटुम्बिक संबन्ध था उसी प्रकार तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध राजाओं के साथ भी इसका गाढ सम्बन्ध था. सिन्धुसौवीर के राजा उदायन, अवंती के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा शतानीक, चंपा के राजा दधिवाहन, और मगध के राजा बिम्बिसार इसके दामाद होते थे. जैन-साहित्य में कुणिक अथवा कोणिक एवं बौद्ध साहित्य में अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध मगधसम्राट् और जैन, बौद्ध एवं हिन्दु कथासाहित्य का ख्यातनाम पात्र वत्सराज उदयन इसके दौहित्र थे. साथ ही भारत के तत्कालीन गणतंत्रात्मक राज्यों में से एक प्रधान राज्यतंत्र का यह विशिष्ट नायक भी था. जैन-परम्परा के अनुसार आर्यावर्त्त की सबसे बड़ी जनसंहारक लड़ाई इसे लड़नी पड़ी थी, जिसमें इसका प्रतिपक्षी इसी का नाती मगधराज अजातशत्रु था.

जैन-साहित्य में इतनी बड़ी प्रसिद्धि पाने वाले एवं उस समय के भारत में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने वाले, इस राजा के विषय में जैन साहित्य के सिवा अन्यत्र कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता. इसी वजह से आज के ऐतिहासिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है. ब्राह्मण-साहित्य की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब उसमें कहीं-कहीं तत्कालीन भारत के मगध, कौसल, कौशांबी और अवंती जैसे राज्यतंत्रात्मक राज्यों का उल्लेख अवश्य मिलता है, किन्तु वैशाली जैसे स्थान का, जिसमें गणतंत्रात्मक पद्धति चलती थी, कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता.

बौद्ध साहित्य में वैशाली और उस पर आधिपत्य रखने वाली 'लिच्छवी' नामक क्षत्रिय जाति का बहुत कुछ वर्णन आता है किन्तु इस स्थान और समाज पर सर्वोपरि अधिकार रखने वाले किसी खास व्यक्ति-विशेष का नाम बौद्ध साहित्य में नहीं आता.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक युग के उद्गमकाल के रूप में गिने जाने वाले इस युग के इतिहास के अभ्यासियों का ध्यान आकृष्ट करने की दृष्टि से प्रस्तुत लेख में, जैनमतानुसार वैशाली के गणतंत्रात्मक राज्य के राजा माने जाने वाले चेटक और उससे संबंधित राजाओं के विषय में जैन ग्रंथों में प्राप्त सामग्री का सारात्मक अंश यहां प्रस्तुत किया जाता है.

तीर्थंकर महावीर के वंश के साथ चेटक का सम्बन्ध

यह पहले ही कहा जा चुका है कि तीर्थंकर श्री महावीर की माता त्रिशला-क्षत्रियाणी चेटक राजा की बहन थी. इसका सबसे प्राचीन प्रमाण जैन आगम आवश्यक-चूर्णि में प्राप्त होता है. इस चूर्णि का रचनाकाल अभी तक अनिर्णीत ही है फिर भी वह विक्रम की आठवीं सदी मे अधिक अर्वाचीन नहीं है, यह निश्चित ही है. आवश्यक सूत्र के टीकाकार हरिभद्र का समय विक्रम संवत् ८०० के आस-पास मैंने निश्चित किया है. (देखो जैन साहित्य संशोधक खण्ड १, अंक १, पृष्ठ ५३) आचार्य हरिभद्र ने अपनी संस्कृतटीका में इस चूर्णिसे सैकड़ों उद्धरण लिये हैं, इससे स्वतः प्रमाणित होता है कि चूर्णि का रचनाकाल हरिभद्र से पूर्व का है. इसी चूर्णि में लिखा है कि महावीर की माता त्रिशला चेटक की बहन थी और त्रिशला के बड़े पुत्र 'नन्दिवर्द्धन' की पत्नी—महावीर की भौजाई, चेटक की पुत्री होती थी. पाठ यह है—'भगवतो माया चेडगस्स भगिणी, भो (जा) यी चेडगस्स धूया.' भगवान् महावीर की माता, चेटक की भगिनी,[1] भौजाई चेटक की पुत्री" इस उल्लेख को ध्यान में रखकर बाद के ग्रंथकारों ने भी कहीं-कहीं चेटक को महावीर के मातुल (मामा) होने का उल्लेख किया है. जैन आगमों में सबसे प्राचीन और प्रथम आगम आचारांग में महावीर की कुछ जीवनी प्राप्त होती है—उसमें एक स्थान पर महावीर की माता का एक नाम 'विदेहदिन्ना' भी आता है. जैसा कि—"समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठस्स गुत्ता तीसे णं तिन्नि नामधिज्जा एवमाहिज्जति तंजहा—तिसला इ वा विदेहदिन्ना इ वा पियकारिणी इ वा" (आचारांग आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित पृ० ४२२) श्रमण महावीर की माता के, जिसका वाशिष्ठ गोत्र था, इसके तीन नाम थे— एक त्रिशला,[2] दूसरा विदेहदिन्ना और तीसरा प्रियकारिणी. विदेहदिन्ना के व्युत्पत्त्यर्थ से यह जाना जाता है कि इनका जन्म विदेह के राजकुल में हुआ था. माता के इस कुलसूचक नाम से महावीर का भी एक नाम विदेहदिन्न था जिसका उल्लेख आचारांग सूत्र के उपर्युक्त सूत्र के बाद तुरत ही आया है जैसा कि—"समणे भगवं महावीरे नाए नायपुत्ते नायकुलनिव्वत्ते विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले" (पृ० ४२२) ये दोनों अवतरण कल्पसूत्र में भी हैं. वहाँ टीकाकार विदेहदिन्न की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—'विदेहदिन्ना त्रिशला तस्या अपत्यं वैदेहदिन्नः.' अब हम देखेंगे कि वैशाली विदेह का ही एक भाग था, अतएव चेटक के वंश को विदेह-राजकुल कहा जाना स्वाभाविक ही है. इस प्रकार महावीर की माता त्रिशला विदेह राजकुल के चेटक की बहन होती थी, यह आवश्यक चूर्णि एवं आचारांग सूत्र के उल्लेख से अधिक स्पष्ट हो जाता है.

त्रिशला के बड़े पुत्र और महावीर के बड़े भाई नंदिवर्द्धन की पत्नी चेटक की पुत्री थी, यह मैं ऊपर कह आया हूं. इसका भी उल्लेख आवश्यकचूर्णि में आता है कि चेटक की किस लड़की ने किस राजा के साथ विवाह किया है. इसके अनुसार चेटक की सात पुत्रियां थीं जिनमें से छह के विवाह हो चुके थे और एक अविवाहित ही रही. इन छहों में ५ वीं पुत्री जेष्ठा का विवाह नन्दिवर्द्धन के साथ हुआ था. यह उल्लेख इस प्रकार है—'जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिन्ना' जेष्ठा (नाम की कन्या) को कुण्डग्राम में—वर्द्धमान (महावीर का मूल नाम) स्वामी के जेष्ठ (बन्धु) नन्दिवर्द्धन को दी थी. इसका उल्लेख आचार्य हेमचन्द्र ने अपने महावीरचरित्र में भी किया है :

---

१. देखो—कल्पसूत्र, धर्मसागर गणि कृत किरणावली टीका पृ० १२४ चेटक महाराजस्य भगवन्मातुलस्य.

२. कल्पकिरणावली धर्मसागर कृत पृ० ५९३, कल्पसुबोधिका विनयविजय कृत पृ० १४४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डग्रामाधिनाथस्य नन्दिवर्द्धनभूभुजः,
श्रीवीरनाथजेष्ठस्य, जेष्ठा दत्ता यथारुचिः ![1]

श्री महावीर के बड़े भ्राता का नाम नन्दिवर्धन था. इसका स्पष्ट उल्लेख आचारांग और कल्पसूत्र जैसे मूल सूत्रों में आया है. यथा—'समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासवगुत्तेणं (आचारांग पृ० ४२२, कल्पसूत्र में भी यही पाठ है)

(कुछ देशों और जातियों में मामा की कन्या पर भानजे का प्रथम हक होता है. यह प्रथा बहुत समय पहले की है. आज भी महाराष्ट्र की कुछ जातियों में इस प्रथा का प्रचलन है. आवश्यक सूत्र की टीका में हरिभद्र सूरि ने 'देशकथा' के वर्णन में एक पुरानी गाथा दी है जिसमें कहा गया है कि—देश--देश के रीति रिवाज अलग-अलग हुआ करते हैं. एक देश में जो वस्तु गम्य या स्वीकार्य होती है वही वस्तु दूसरे प्रदेश में अगम्य या अस्वीकार्य हो जाती है. जैसे—अंग और लाट देश में लोग मातुलदुहिता—मामा की लड़की को गम्य मानते हैं किन्तु गोड़ देश में उसे बहन मान कर अगम्य समझते हैं. वह गाथा यह है :

छंदो गम्मागम्मं जह माउलदुहियमंगलाडाणं,
अन्नेसिं सा भगिणी, गोलाईणं अगम्मा उ !

जिस प्रकार महावीर के मामा की पुत्री ने अपनी फूफी के लड़के नन्दिवर्द्धन के साथ विवाह किया था उसी प्रकार खुद महावीर की पुत्री प्रियदर्शना ने भी अपनी सगी फूफी सुदर्शना के लड़के जमालि नामक क्षत्रियकुमार से विवाह किया था. इसका उल्लेख अनेक प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों में है. आवश्यक सूत्र के भाष्य टीका और चूर्णि में भी यही बात मिलती है. जैसा कि—'कुंडलपुरं नगरं तत्थ जमाली सामिस्स भाइणिज्जो—तस्स भज्जा सामिस्स दुहिता' (हरिभद्रकृत आवश्यकसूत्र टीका पृ० ३१२).

भारत के दूसरे राजाओं के साथ चेटक का कौटुम्बिक संबंध

मैं पहले ही कह आया हूं कि चेटक की कुल सात पुत्रियां थीं जिनमें से एक कुमारिका ही रही और शेष छहों ने अपने समय के ख्यातनाम राजाओं के साथ विवाह किया था, जिसका उल्लेख आवश्यकचूर्णि में इस प्रकार है :

'एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया हेहयकुलसंभूओ. तस्स देवीणं अण्णमण्णाणं सत्त धूताओ. पभावती, पउमावती, मिगावती, सिवा, जेट्ठा, सुजेष्ठा चेल्लण त्ति. सो चेडओ सावओ परविवाहकरणस्स पच्चक्खातं. धूताओ ण देति कस्स त्ति. ताओ माति मिस्सगाओ रायं आपुच्छित्ता अण्णसिं अच्छितकाणं सरिसगानं देति. पभावती वीतिभए उद्दायणस्स दिण्णा, पउमावती चंपाए दधिवाहणस्स, मिगावती कोसंबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स, जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स णंदिवद्धणस्स दिण्णा. सुजेट्ठा चेल्लणाय देवकारिओ अच्छंति.[2]

हैहय कुलोत्पन्न वैशाली के राजा चेटक की अलग-अलग रानियों से सात पुत्रियां हुईं—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, जेष्ठा सुजेष्ठा तथा चेलना. राजा श्रावक था. उसे परविवाहकरण का प्रत्याख्यान था. इसलिए वह अपनी पुत्रियों का भी विवाह नहीं करता था. तब रानियों ने राजा की अनुमति लेकर अपनी पुत्रियों के सदृश राजाओं के साथ उनका विवाह कर दिया. इनमें प्रभावती का विवाह वीतिभय के राजा उदायन के साथ, मृगावती का कोशांबी के राजा शतानिक के साथ, शिवा का उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के साथ, पद्मावती का चंपा के राजा दधिवाहन के साथ और जेष्ठा का कुण्डग्रामवासी महावीर के जेष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के साथ हुआ था. सुजेष्ठा और चेलना अभी कुंवारी थी. आचार्य हेमचन्द्र के महावीरचरित्र में भी यही बात है :

१. 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र' दसवां पर्व, पृ० ७७ (प्रकाशक भाव नगर जैनधर्म प्रसारक सभा).
२. आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हरिभद्रीय टीका पृ० ६७६–७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतश्च वसुधावध्वा मौलिमाणिक्यसन्निभा, वेशालीति श्रीविशाला नगर्यस्ति गरीयसी।
आखंडल इवाखण्डशासनः पृथिवीपतिः, चेटीकृतारिभूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत्।
पृथग्राज्ञी भवास्तस्य, बभूवुः सप्त कन्यकाः, सप्तानामपि तद्राज्यांगानां सप्तेव देवताः।
प्रभावती पद्मावती मृगावती शिवापि च, जेष्ठा तथैव सुजेष्ठा चिल्लणा चेति ताः क्रमात्।
चेटकस्तु श्रावकोऽन्यविवाहनियमं वहन्, ददौ कन्या न कस्मैचिदुदासीन इव स्थितः।
तन्मातर उदासीनमपि ह्यापुच्छ्य चेटकम्, वराणामनुरूपाणां प्रददुः पंच कन्यकाः।
प्रभावती वीतभयेश्वरोदायनभूपतेः, पद्मावती तु चंपेश - दधिवाहनभूभुजः।
कोशाम्बीश - शतानीकनृपस्य तु मृगावती, शिवा तूज्जयिनीशस्य प्रद्योतपृथिवीपतेः।
कुण्डग्रामाधिनाथस्य नन्दिवर्द्धनभूभुजः, श्रीवीरनाथज्येष्ठस्य ज्येष्ठा दत्ता यथारुचिः।
सुज्येष्ठा चिल्लणा चापि कुमार्याविव तस्थतुः, रूपश्रियोपमाभूते ते द्वे एव परस्परम्।

अन्तिम दो पुत्रियां, जो कुंवारी थीं, उनमें से एक चिल्लणा का विवाह मगध के सम्राट् श्रेणिक के साथ किस प्रकार हुआ और दूसरी सुजेष्ठा जैन साध्वी कैसे बनी, उस पर आगे विचार किया जायगा. ज्येष्ठा किन्तु वय की दृष्टि से कनिष्ठा का जो विवरण ऊपर दिया गया है इससे अधिक जैनग्रंथों में उसके विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं होती.

प्रभावती

यह चेटक की प्रथम पुत्री है. इसने वीतिभय के राजा उदायन के साथ विवाह किया था. उदायन के जीवन की कुछ झांकियां कई जैन-ग्रंथों में मिलती हैं. उनमें सबसे पुराना उल्लेख जैन सूत्र भगवतीसूत्र शतक १३ वें के छठे उद्देश में इस प्रकार है :

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिंधुसोवीरेसु जणवएसु वीतिभये नामं नगरे होत्था. तस्स णं वीतिभयस्स नगरस्स बहिया उत्तर-पुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं मियवणं नामं उज्जाणे होत्था. तत्थ णं वीतिभये नगरे उदायणे नामं राया होत्था...तस्स... रन्नो पभावती नामं देवी होत्था. तस्स णं उदायणस्स रन्नो पुत्ते प्रभावतीदेवीए अत्तए अभीति नामं कुमारे होत्था. ...तस्स णं उदायणस्स रन्नो नियए भायणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था. से णं उदायणे राया सिंधुसोवीरप्पामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीतिभयप्पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं महासेणप्पामोक्खाणं दसण्हं राईणं बद्ध-मउडाणं विदिन्नछत्तचामरवालवीयणाणं अन्नेसिं च बहूणं राइसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं जाव कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ.

उस काल उस समय सिन्धुसौवीर नाम के जनपद में वीतिभय नाम का नगर था. उस नगर के बाहर उत्तर-पूर्व में मृगवन नाम का एक उद्यान था. उस नगर में उदायन नाम का राजा राज्य करता था. उसकी प्रभावती नाम की रानी थी और अभीति नाम का पुत्र था. उसका केशीकुमार नाम का भानजा था. उस राजा का सिन्धुसौवीर आदि सोलह जनपदों पर, वीतिभय आदि तीन सौ (तिरेसठ) नगरों पर, सैकड़ों खदानों पर, मुकुटबद्ध दस राजाओं पर एवं अनेक रक्षकों, दण्डनायकों, सेठों, सार्थवाहों पर अधिकार था. वह श्रमणोपासक था. जैनशास्त्र प्रतिपादित जीवादि तत्वों का जानकार था. इत्यादि....

इस सूत्र से यह निश्चित हो जाता है कि प्रभावती का विवाह उदायन से हुआ था. आवश्यकचूर्णि का उपरोक्त कथन भी इसी प्राचीन सूत्रपरम्परा पर आधारित है. उपरोक्त सूत्र में महासेन आदि दस मुकुटबद्ध राजाओं पर उदायन का अधिकार था, यह वाक्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखता है, महासेन के सिवा अन्य नौ आज्ञांकित राजा कौन थे यह किसी भी जैनग्रंथ में नहीं मिलता. किन्तु महासेन उदायन का आज्ञांकित राजा कैसे बना, इसका कई जैन ग्रंथों में विवरण प्राप्त होता है. यह महासेन और कोई नहीं, इतिहासप्रसिद्ध अवंती का राजा चंडप्रद्योत ही था. इसी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर नाम महासेन है. उदायन ने महासेन पर किन कारणों से चढ़ाई की थी, उसे किस प्रकार पराजित कर दसपुर ले आया था और दसपुर की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, उसका सारा वृतान्त आवश्यक चूर्णि में है जिसका सारात्मक अंश यह है :

"एक समय कुछ मुसाफिर समुद्र की यात्रा करते थे. उस समय में जोरों का तूफान आया जिसके कारण जहाज डांवाडोल हो गया. वह आगे बढ़ता ही नहीं था. इस अवस्था से लोग घबरा गये. लोगों की यह स्थिति देखकर एक देव के दिल में उनके प्रति दया आई. उसने जहाज को तूफान से निकाल कर एक सुरक्षित जगह पहुंचा दिया. देव ने स्वनिर्मित चन्दनकाष्ठ की प्रतिमा, जो काष्ठपेटिका में बन्द थी, उन्हें दी और कहा—यह भगवान् महावीर की काष्ठ-प्रतिमा है. यह महाप्रभावशाली है. इसके प्रभाव से आप लोग सही-सलामत समुद्रयात्रा पूरी कर सकेंगे. इतना कह देव चला गया. कुछ दिनों के बाद जहाज सिन्धुसौवीर के किनारे पर पहुँचा. लोगों ने वह मूर्ति वीतिभय के राजा उदायन को भेट में दी. उदायन और उसकी रानी प्रभावती ने अपने ही महल में मन्दिर का निर्माण कर उसमें वह मूर्ति स्थापित की और उसकी प्रतिदिन पूजा-भक्ति करने लगी. राजा पहले तो तापसधर्मी था, धीरे-धीरे उसकी उस मूर्ति की ओर श्रद्धा बढ़ने लगी. एक दिन रानी प्रभावती मूर्ति के सामने नृत्य कर रही थी और उदायन वीणा बजाता था. उस समय राजा नृत्य करती हुई रानी प्रभावती के देह को विना मस्तक के देखकर अधीर हो उठा और उसके हाथ से वीणा का गज छूट गया. वीणा बजनी बंद हो गई. सहसा वीणा को बन्द देखकर रानी क्रोध में आकर बोली—'क्या मैं खराब नृत्य कर रही थी जो आपने वीणा बजाना ही बंदकर दिया ? उदायन ने रानी के बार बार आग्रह से सत्य बात कह दी. उदायन से यह बात सुन वह सोचने लगी—"अब मेरा आयुष्य अल्प है, अतः मुझे अपना श्रेय करना चाहिए." उसने उदायन से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी. लेकिन रानी के प्रति अधिक अनुराग होने से उसने आज्ञा नहीं दी. किन्तु रानी के उत्कट वैराग्य को देखकर अन्त में एक शर्त के साथ उसे प्रव्रज्या की आज्ञा देदी. वह शर्त यह थी कि 'अगर मेरे पहले ही स्वर्ग चली जाओ तो देव बन कर मुझे प्रतिबोधित करने के लिये अवश्य आना होगा. उसने शर्त मान ली. प्रभावती दीक्षित हो गई. रानी मर कर देव बनी और उसने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार राजा को सद्बोध दिया और राजा अधिक धर्मनिष्ठ बना.

रानी की मृत्यु के बाद महावीर की मूर्ति की देखभाल और पूजा एक कुब्जा दासी करने लगी. इस प्रतिमा की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी, और लोग दूर-दूर से उसके दर्शन के लिये आते थे.

एक बार गंधर्व देश का कोई श्रावक प्रतिमा के दर्शन के लिये आया. दासी ने उस श्रावक की सेवा खूब की. श्रावक दासी की भक्ति-भाव से एवं सेवा शुश्रूषा से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उससे संतुष्ट होकर उसे मनोवांछित फल देने वाली बहुत सी गोलियाँ दीं. गोलियों के भक्षण से दासी का कुबड़ापन मिट गया और उसे अपूर्व सौंदर्य मिला. शरीर सोने की कांति की तरह चमकने लगा. सोने जैसा शरीर होने से इसे लोग सुवर्णगुटिका कहने लगे,—सुर्वर्णगुटिका के दैवी सौंदर्य की बात प्रद्योत के कानों तक पहुंच गई. वह उस पर मुग्ध हो गया.

इधर दासी भी प्रद्योत से प्रेम करती थी. उसने उज्जैनी के राजा प्रद्योत के पास एक दूत भेजा. दूत ने प्रद्योत से जाकर कहा—सुवर्णगुटिका आपसे प्रेम करती है और आपको बुलाती है. राजा प्रद्योत अवसर पाकर एक दिन अपने नलगिरि हाथी पर चढ़कर तुरन्त आया. दोनों एक दूसरे को पाकर बहुत प्रसन्न हुए. प्रद्योत सुवर्णगुटिका को और महावीर की प्रतिमा को लेकर रातोंरात वापिस लौट गया. दासी जाते समय वैसी ही एक दूसरी प्रतिमा तैयार करवाकर उसके स्थान पर रखती गई. प्रातःकाल राजा के सिपाहियों ने देखा कि मार्ग पर नलगिरि हाथी की लीद और मूत्र पड़े हैं जिसकी गंध से नगर के हाथी उन्मत्त हो उठे हैं. थोड़ी दूर चलने पर उन्हें नलगिरि के पदचिह्न दिखाई पड़े. इतने में मालूम हुआ कि राजा की दासी लापता है और चन्दन की प्रतिमा के स्थान पर कोई दूसरी प्रतिमा रक्खी हुई है.

यह समाचार जब राजा उदायन के पास पहुँचा तो उसे बहुत क्रोध आया. उसने प्रद्योत के पास समाचार भेजा कि दासी की मुझे चिन्ता नहीं, तुम चन्दन की प्रतिमा लौटा दो. परन्तु प्रद्योत प्रतिमा देने को तैयार नहीं हुआ. उदायन अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशाल सेना के साथ उज्जैनी पर चढ़ाई करने के लिये चल पड़ा. उस समय जेठ महीना चल रहा था. मार्ग में पानी नहीं मिलने से उदायन की सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा. जब वह पुष्करणा प्रदेश में आया तब कहीं जाकर शांति मिली. वहाँ कुछ समय तक विश्राम करने के बाद पूरी तैयारी के साथ उज्जैनी पर चढ़ाई कर दी. इधर प्रद्योत ने भी अपनी तैयारी कर ली थी. दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध होने लगा. कुछ समय बाद दोनों राजाओं को ख्याल आया कि व्यर्थ ही प्रजा का ध्वंस करने से क्या लाभ ? क्यों न हम दोनों ही परस्पर युद्ध करें ? दोनों ने एक दूसरे को दूत द्वारा संदेश भेजा. दोनों इस बात पर राजी हो गये. साथ ही दोनों ने रथ पर बैठ कर युद्ध करने का निश्चय किया. किन्तु युद्ध के मैदान में प्रद्योत रथ के बजाय अपने प्रसिद्ध नलगिरि हाथी पर बैठ कर लड़ने आया. उदायन चण्ड-प्रद्योत की धूर्तता को पहचान गया. अब दोनों में काफी समय तक युद्ध होता रहा उदायन ने अपने बाणों से हाथी के पैर को बींध दिया जिससे वह घायल होकर जमीन पर गिर पड़ा और प्रद्योत पकड़ा गया. उदायन के सैनिक प्रद्योत को बन्दी बनाकर अपने शिविर में ले आये और 'दासीपति प्रद्योत' शब्दों से उसका मस्तक अंकित कर दिया. उदायन प्रद्योत को कैद करके वीतिभय लौट चला, मार्ग में वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गई. वर्षा का समय व्यतीत करने के लिये उदायन ने एक अच्छे स्थल पर अपनी छावनी डाल दी. सेना को दस विभागों में विभक्त कर उसकी अलग-अलग छावनियाँ बनाई. साथ ही सेना की सुरक्षा के लिये चारों ओर मिट्टी की दीवारें खड़ी कर दीं. उदायन जो भोजन करता था वह प्रद्योत को भी दिया जाता था. पर्यूषण पर्व आया. उन दिन रसोइये ने प्रद्योत से पूछा—महाराज, आज आप क्या खायेंगे ? प्रद्योत ने समझा कि आज मुझे भोजन में जहर दिया जाने वाला है तभी तो मुझे अकेले खाने का निमंत्रण दिया जा रहा है. उसने रसोईये से कहा—'आज क्यों पूछ रहे हो' उत्तर मिला, 'आज पर्यूषण होने से उदायन राजा को उपवास है. इसलिए आज आपके लिये ही भोजन बनेगा' प्रद्योत ने कहा 'तो आज मेरा भी उपवास है. जब उदायन ने यह सुना तो वह प्रद्योत की धूर्तता पर बहुत हँसा. उसने सोचा, ऐसा पर्यूषण मनाने से क्या लाभ जिसमें हृदय की शुद्धता नहीं ? उदायन ने उसे अपने पास बुलाया और हृदय से उसे क्षमा दान दिया. उसे उसका राज्य पुनः लौटाकर मुक्त कर दिया और उसका मस्तक सुवर्णपट्ट से विभूषित कर उसे आदरपूर्वक विदा कर दिया. वर्षाकाल के बीतने पर वहाँ से उदायन चल पड़ा और अपनी सेना के साथ वापिस अपने नगर लौट आया.

उदायन ने जिस स्थल पर अपनी सेनाओं की दस विभागों में छावनियाँ डाल रक्खी थी, वहाँ पर उन सेनाओं को रसद पहुँचाने के लिये आस पास के व्यापारियों ने भी अपने-अपने पड़ाव डाल रक्खे थे. सेना के चले जाने के बाद वे व्यापारी-गण वहीं स्थायी रूप से बस गये और वह स्थल दसपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ.[1]

---

१. आवश्यक चूर्णि पृ० २९६-३००

मध्य प्रदेश के 'मंदसौर' शहर को दशपुर कहा जाता है. मंदसौर का नाम पुराने लेखों में 'दशपुर' लिखा जाता था. 'दशपुर' का नाम मंदसौर कैसे पड़ा, इस विषय में डा० फ्लीटने Corpus Inescriptionum indiarum नामक ग्रंथ के तीसरे भाग में इस प्रकार लिखा है :

"इस गांव को इन्दौर तक के और आस पास के ग्रामीण लोग मन्दसौर के बजाय, 'दशोर' ही कहते हैं. लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व लिखी गई अत्रत्य और फारसी भाषा की सनदों में भी 'दशोर का ही प्रयोग किया है. जिस प्रकार बेलगांव जिले के 'उगरगोल' और 'संपगाम' को पंडित लोग क्रमशः 'नखपुर' और 'अहिपुर' लिखते हैं वैसे ही यहाँ के पंडित दशपुर का ही प्रयोग करते हैं. इनका मूल नाम संस्कृत में था या मूल ग्रामीण नामों को पण्डितों ने संस्कृत में बना डाला, यह शंकास्पद ही है. पहले इस स्थल पर पौराणिक राजा 'दशरथ' का नगर था." ऐसा स्थानीय लोग कहते हैं.

अगर यह कथन सत्य है तो इस गांव का नाम 'दशरथोर' होना चाहिए. वस्तुत इसका सही अर्थ यह भी हो सकता है जैसे—इस समय इस नगर में आस पास के खिलचीपुर, जंकुपुरा, रामपुरिया, चन्द्रपुरा, बालागंज आदि बारह तेरह गांवों का समावेश हुआ है, वैसा ही दस गांवों (पुर) का समावेश होने से यह दशपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार महासेन प्रद्योत को वीतभय के उदायन का आज्ञांकित माना जाता है.

उदायन का पिछला जीवन

उदायन के राजकीय जीवन सम्बन्धी उल्लिखित सारी घटनाएँ बाद के जैन-ग्रंथों में मिलती हैं. भगवती जैसे मूल आगम में उदायन के विषय में केवल इतना ही वर्णन मिलता है :

एक बार भगवान् महावीर वीतिभय पधारे. उदायन राजा उनके दर्शन के लिये गया और उनका उपदेश सुनकर उसने प्रव्रज्या लेने का विचार किया. प्रव्रज्या लेने के पूर्व उसके मन में एक विलक्षण विचार आया. उसने सोचा—'प्रायः राज्यप्राप्ति होने पर लोग दुर्व्यसनी हो जाते हैं और दुर्व्यसनी लोग मर कर नरक में जाते हैं. कहीं मेरा पुत्र 'अभीति' राज्य पाकर दुर्व्यसनी न बन जाय और मर कर नरकवासी न हो जाय. यह सोचकर उसने अपने पुत्र अभीतिकुमार को राज्य न देकर अपने भानजे केशीकुमार को राज्य दिया और प्रव्रज्या ग्रहण की. पिता के इस व्यवहार से अभीतिकुमार बहुत क्रुद्ध हुआ और वह अपना सारा सामान लेकर मौसेरे भाई कोणिक के पास 'चंपा' चला गया और वहीं रहने लगा. पिता के साथ उसकी वैरवृत्ति आजीवन रही और वह वहीं मर गया. इस विषयक भगवती सूत्र का पाठ यह है :

'तए णं से उदायणे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव नमंसित्ता एवं वयासी—एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! जाव से जहेयं तुब्भे वदहत्ति कट्टु जं नवरं देवाणुप्पिया......अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामि........तए णं तस्स उदायणस्स रन्नो अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था एवं खलु अभीई कुमारे ममं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमंग पुण पासणयाए ? तं जति णं अहं अभीइं कुमारं रज्जे ठावित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता जाव पव्वयामि तो णं अभीई कुमारे रज्जे य रट्ठे य जाव जणवए माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोव-

---

किन्तु मंदसौर नाम जो इस समय के नक्शों आदि में प्रसिद्ध है, इसकी असलियत को अभी तक कोई समझ नहीं सका. हां डाक्टर भगवानलाल इन्द्र जी ने एक बार मुझसे कहा था कि—'इसका नाम मंद-दसपुर पड़ा होगा.' 'मंद' अर्थात् दुखी बना हुआ. मुसलमानों ने इस शहर की और हिन्दू देवालयों की बड़ी दुर्दशा की थी. इसी वजह से आज भी नागर ब्राह्मण यहाँ का पानी नहीं पीते.

'एक बार मैंने यहाँ के एक पंडित से इस गांव का असली नाम पूछा था. तब उसने बताया था कि इस गांव का मन्न-दशौर' भी नाम था. इस सम्बन्ध में मि० एफ० एस० ग्राउक की सूचना भी काफी महत्त्व रखती है. वे कहते हैं कि—मंदसौर में दो गांवों का समावेश होता है. एक 'मद्' और दूसरा 'दशौर'. मद् जिसे आज 'अफझलपुर' कहते हैं, जो मंदसौर से दक्षिण पूर्व में ग्यारह मील दूरी पर है.

ऐसा कहा जाता है कि—'मद्' गांव के हिन्दुदेवालयों को तोड़ कर उनके पत्थरों से यहाँ का किला बनाया गया था. इसलिए मंदसौर यह नाम पड़ा हो. जो भी हो, सही बात का तो 'दशपुरमहात्म्य' नामक पुस्तक से ही पता लग सकता है. यह पुस्तक मुझे देखने को नहीं मिली. इस लेख के सिवा उषवदान के नाशिक के एक प्राचीन लेख की तीसरी पंक्ति में 'दशपुर' ऐसा संस्कृत नाम आया है. (देखो आर्की० सर्वे० वैस्ट इ० पु० ४ पृ० ५१, ६६ पन्ने ५२, नं० ५) तथा मंदसोर के भी एक दूसरे लेखमें भी यही नाम देखने में आता है. इसकी तिथि विक्रम संवत् १३२१ (ई०स० १२६४-६५) गुरुवार भाद्रपद शुक्ला पंचमी है.

यह लेख किले के पूर्व तरफ के प्रवेशद्वार के अन्दर के दरवाजे के बाईं ओर भीत पर चुने हुए एक श्वेत पत्थर पर अंकित है. तथा बृहद् संहिता १४, ११, १६ (देखो कर्ण का अनुवाद जर्न० रॉ० ऐ० सो० नॉ० सं० पु० ५ पृ० ८३) के अवन्ति के साथ इसी नाम का उल्लेख किया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वएणे अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ. तं नो खलु मे सेयं अभीईकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए, सेयं खलु मे नियगं भाइणेज्जं केसिकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ जाव पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ...... तए णं से केसीकुमारे राया जाए महया जाव विहरति. तए णं से उदायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं जाव सव्व दुक्खप्पहीणे.

तए णं तस्स अभीइस्स कुमारस्स अन्नदा कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं उदायणस्स पुत्ते प्रभावती देवीए अत्तए, तए णं से उदायणे राया ममं अवहाय नियगं भाणिज्जं केसिकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स जाव पव्वइए. इमेणं एयारूवेणं महया अप्पत्तिएणं मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतपुर—परियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमाए वीतीभयाओ नयराओ पडिनिग्गच्छति—जेणेव चंपा नयरी जेणेव कुणिए राया तेणेव उवागच्छति—कुणियरायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ. तए णं से अभीयी कुमारे समणोवासए यावि होत्था अभिगय जाव विहरइ——' (भगवती सूत्र पृ० ६१८-२०)

उदायन की मृत्यु

आवश्यक चूर्णि, टीका आदि ग्रंथों में उदायन की मृत्युविषयक विवरण इस प्रकार है :

उदायन राजा के दीक्षा लेने के बाद रूखे-सूखे आहार से शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई. वैद्यों ने उन्हें दही खाने को कहा. इसके लिये वे व्रज में ही रहने लगे. एक समय वे वीतिभय गये. वहां उनका भानजा केशीकुमार राज्य करता था. यह राज्य इन्होंने उसे दिया था. केशीकुमार को उसके दुष्ट मंत्रियों ने भरमा दिया कि 'यह उदायन भिक्षु-जीवन से ऊबकर अब पुनः राज्य प्राप्त करना चाहता है.' इस पर केशीकुमार ने कहा—अगर ऐसा ही है तो मैं उन्हें राज्य दे दूंगा. इस पर मंत्रियों ने कहा—'मिला हुआ राज्य कहीं इस प्रकार दिया जाता है ?' लम्बे समय तक मंत्रियों ने उसे खूब समझाया और राज्य न देने के लिये राजी किया. केशीकुमार ने मंत्रियों से पूछा—तो अब क्या उपाय करना चाहिए ? मंत्रियों ने कहा—जहर देकर इसे मार डालना चाहिए. इस प्रकार केशीकुमार ने एक गोपालक के जरिये दही में जहर डलवा कर उदायन को खिला दिया. जिससे उदायन की मृत्यु हो गई.

उदायन मुनि की इस प्रकार की मृत्यु से उनके एक मित्र देव को अत्यन्त क्रोध आया और साथ ही केशीकुमार की इस कृतघ्नता पर भी वह अत्यन्त क्रोधित हुआ. उसने धूल बरसा कर सारे नगर को नष्ट कर दिया. इस नगर-प्रलय में केवल एक कुम्भकार बचा जिसने राजाज्ञा की उपेक्षा कर उदायन मुनि को आश्रय दिया था. देव ने इसे उठाकर सिनवल्ली नामक स्थान में रख दिया. बाद में इसी स्थल पर इसी के नाम का एक नगर बसा था. वीतभय पत्तन धूलिप्रक्षेप के कारण छिप गया और आज भी वहां धूलि की बड़ी राशि मौजूद है.[1]

---

१. आवश्यक सूत्र टीका पृ० ५३७–७ देखो, प्राकृतकथासंग्रहगत उदायन की कथा :

आचार्य हेमचन्द्र ने, महावीर के समय की घटित घटनाओं को तत्कालीन ग्रंथों एवं अनुश्रुतियों से संग्रहीत कर महावीर चरित्र में व्यवस्थित किया है. उदायन सम्बन्धी उल्लिखित सभी बातें लिखने के साथ-साथ उन्होंने एक नई घटना का भी उल्लेख किया है. वीतिभय पत्तन का देवकोप से नाश होने के बाद चन्दन की वह मूर्ति वहीं पर धूल के ढेर में दब गई थी. उस मूर्ति का आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से कुमारपाल राजा ने उद्धार किया और पाटन में लाकर उसकी एक भव्य मन्दिर में प्रतिष्ठा की. इसी घटना से यह निश्चित हो जाता है कि वीतिभय का उद्ध्वस्त स्थान आचार्य हेमचन्द्र से अपरिचित नहीं था. इस उद्ध्वस्त स्थान में उन्हें एक मूर्ति मिली थी और उसकी प्रतिष्ठा पाटन में राजा कुमारपाल से करवाई थी. इस घटना पर विश्वास करने से यह ऐतिहासिक तथ्य अवश्य प्रकट होता है. इसी मूर्ति के प्रसंग में आचार्य हेमचन्द्र ने गुजरात की गौरवशाली राजधानी पाटन और कुमारपाल का जो आलंकारिक शब्दों में वर्णन दिया है वह लम्बा होने पर भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा इस दृष्टि से यहां दिया जा रहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदायन की मृत्यु की यह परम्परा अति प्राचीन है—ऐसा लगता है. क्योंकि आवश्यक सूत्र निर्युक्ति में इस कथा का मूल उपलब्ध होता है. इस सूत्र की नियुक्ति की रचना भद्रबाहु ने की है, ऐसा कहा जाता है, और परम्परा उनका

'अभयकुमार भगवान् से प्रश्न करता है—'भगवन् ! आपने कहा था कि यह प्रतिमा पृथ्वी में दब जायगी तो कब प्रकट होगी ?' भगवान् बोले—'हे अभय ! सौराष्ट्र, लाट, और गुर्जर देश की सीमा पर अनहिलपुर नाम का एक नगर बसेगा. वह नगर आर्यभूमि का शिरोमणि, कल्याण का स्थान और आर्हत धर्म का एक छत्र रूप तीर्थ होगा. वहां के चैत्यों की रत्नमयी निर्मल प्रतिमाएं नंदीश्वर आदि स्थानों की प्रतिमाओं की सत्यता को बताने वाली होंगी. प्रकाशमान सुवर्णकलशों की श्रेणियों से जिनके शिखर अलंकृत हैं ऐसे मानों साक्षात् सूर्य ही आकर विश्राम कर रहा हो ऐसा वह नगर सुशोभित होगा. वहां के लोग प्रायः श्रावक होंगे और अतिथिसंविभाग करके ही भोजन करेंगे. दूसरों की संपत्ति में ईर्ष्या रहित, स्वसंपत्ति में सन्तुष्ट और सदा पात्रदान में रत ऐसी वहां की प्रजा होगी. अलकापुरी के यक्षों की तरह वहां के बहुत से श्रावक धनाढ्य होंगे. वे अर्हद्भक्त बन कर सातों क्षेत्रों में धन का व्यय करेंगे. सुषमा काल की तरह वहां के लोग पर-धन और परस्त्री से विमुख होंगे. हे अभयकुमार ! मेरे निर्वाण के बाद सोलह सौ उनसत्तर वर्ष के बीतने पर उस नगर में चौलुक्य वंश में चन्द्र के समान प्रचण्ड पराक्रमी अखण्ड शासन वाला कुमारपाल नाम का धर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर राजा होगा. वह महात्मा पिता की तरह प्रजा का पालक होगा और उन्हें समृद्धिशाली बनाएगा. सरल होने पर भी अति चतुर, शान्त होने पर भी आज्ञा देने में इन्द्र के समान, क्षमावान् होने पर भी अधृष्य, ऐसा वह राजा चिरकाल तक इस पृथ्वी पर राज्य करेगा. जैसे उपाध्याय अपने शिष्यों को विद्वान् और शिक्षित बनाता है वैसा ही वह अपनी प्रजा को भी विद्वान् सुशिक्षित और धर्मनिष्ठ बनाएगा. वह शरणार्थियों को शरण देने वाला होगा. परनारियों के लिये वह सहोदर भाई होगा. धर्म को प्राण और धन से भी अधिक मानने वाला होगा. पराक्रमी, धर्मात्मा, दयालु एवं सभी पुरुषगुणों से श्रेष्ठ होगा. उत्तर में तुरुषक—तुर्कस्तान तक, पूर्व में गंगा नदी तक, दक्षिण में विन्ध्यगिरि तक और पश्चिम में समुद्र तक की पृथ्वी पर उसका अधिकार होगा.

एक समय वह वज्र शाखा और चान्द्रकुल में उत्पन्न हेमचन्द्र नाम के आचार्य को देखेगा. उन्हें देखते ही वह इतना प्रसन्न होगा जैसे गरजते मेघ को देख कर मयूर प्रसन्न होते हैं. वह उनके दर्शन के लिये जाने की शीघ्रता करेगा. जब आचार्य चैत्य में बैठकर धर्मोपदेश करते होंगे, उस समय वह अपने मंत्रीमण्डल के साथ उनके दर्शन के लिये आएगा. प्रथम देव को वन्दन कर तत्त्व को नहीं जानता हुआ भी अत्यन्त शुद्ध सरल हृदय से आचार्य को नमस्कार करेगा. प्रीतिपूर्वक आचार्य का उपदेश सुन कर सम्यक्त्वपूर्वक श्रावक के अणुव्रतों को स्वीकार करेगा. तत्व का बोध प्राप्त कर वह श्रावक के आचार का पारगामी होगा. राजसभा में बैठा होने पर भी धर्मचर्चा ही करेगा. प्रायः निरन्तर ब्रह्मचर्य रखने वाला वह राजा अन्न, फल, शाक आदि के विषय में भी अनेक नियमों को ग्रहण करेगा. साधारण स्त्रियों का तो उसे त्याग ही रहेगा किन्तु अपनी रानियों तक को वह ब्रह्मचर्य का उपदेश करेगा. जीव अजीव आदि तत्वों का जानकार वह राजा दूसरों को भी तत्व समझाएगा—सम्यक्त्वी बनाएगा. अर्हद्धर्मद्वेषी ब्राह्मण भी उसकी आज्ञा से गर्भ-श्रावक बनेंगे. देवपूजा और गुरुवन्दन करके वह राजा भोजन करेगा. अपुत्र मरे हुए का धन वह कभी नहीं लेगा. वस्तुतः विवेक का यही सार है. विवेकी व्यक्ति सदा तृप्त ही रहते हैं. वह स्वयं शिकार नहीं करेगा और उसकी आज्ञा से दूसरे राजागण भी शिकार छोड़ देंगे. उसके राज्य में मृगया तो दूर रही, मक्खी मच्छर को भी कोई मारने की हिम्मत नहीं करेगा. उसके अहिंसात्मक राज्य में जंगल के प्राणी मृग आदि एक दम निर्भीक होकर इधर उधर घूमा करेंगे. उसके राज्य में अमारी घोषणा होगी. जो जन्म से मांसाहारी होगे वे भी उसकी आज्ञा से दुःस्वप्न की तरह मांस खाना ही भूल जावेंगे. अपने पूर्वजों के रिवाज के अनुसार जिस मद्य का श्रावक भी पूरी तरह से त्याग नहीं कर सके उसका वह अपने समस्त राज्य में निषेध करेगा. यहां तक कि कुम्भकार भी मद्य पात्र बनाना छोड़ देंगे. मद्यपान से जिन लोगों की संपत्ति क्षीण हो गई है, ऐसे लोग भी मद्य-निषेध से उसके राज्य में पुनः सम्पत्तिमान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय महावीर के निर्वाण के बाद की द्वितीय शताब्दी बताती है. ऐतिहासिक दृष्टया निर्युक्ति के कर्त्ता भद्रबाहु का समय इतना प्राचीन नहीं लगता. हां, टीकाकारों की अपेक्षा उनका समय अधिक प्राचीन है. इस कारण टीकाकारों द्वारा लिखित उदायन की इस कथा का प्रचलन बहुत समय पहले था, यह निश्चित है.

मूर्तिविषयक वर्णन जो भी हो किन्तु जैन कथा और सूत्रों के आधार से इतना तो अवश्य माना जा सकता है कि महावीर के समय सिन्धुसौवीर नाम के देश में वीतिभय नामका नगर अवश्य था. और वहाँ उदायन नाम का राजा राज्य करता था. उसकी स्त्री का नाम प्रभावती था, जो वैशाली के राजा चेटक की पुत्री होती थी. अभीति उसका पुत्र था अभीति के पिता ने किसी कारण से उसे राज्य नहीं दिया और इसी वजह से वह चम्पा में कोणिक राजा के आश्रय में जाकर रहा. राजा महासेन के साथ उदायन का युद्ध हुआ होगा और उसमें उदायन विजयी हुआ होगा.[१]

होंगे. जिस द्यूत का नल राजा भी त्याग नहीं कर सका उसका वह अपने समस्त राज्य में बहिष्कार करेगा. कुक्कुटयुद्ध, कपोतयुद्ध आदि नृशंस मनोरंजनों को वह अपने समस्त राज्य में बंद करा देगा. निःसीम वैभववाला वह राजा प्रत्येक ग्राम में जिनमन्दिर बनवा कर सारे पृथ्वीमण्डल को जिनमन्दिरों से विभूषित करेगा. समुद्रपर्यन्त प्रत्येक मार्ग और नगर में प्रतिमा की रथयात्रा का महोत्सव कराएगा. द्रव्य के विपुल दान से वह अपने नाम का संवत्सर चलाएगा.

ऐसा वह महान् प्रतापशाली राजा एक दिन गुरुमुख से कपिल मुनि द्वारा प्रतिष्ठित एवं पृथ्वी में दबी हुई उस दिव्य प्रतिमा के विषय में बात सुनेगा. बात सुनते ही विश्वपावनी उस मूर्ति को हस्तगत करने का विचार करेगा. मन के उत्साह और शुभ निमित्त से उसे यह विश्वास हो जायगा कि मैं उस दिव्य प्रतिमा को प्राप्त कर सकूंगा. तब वह गुरु की आज्ञा से योग्य पुरुषों को वीतिभय के उद्ध्वस्त स्थल पर भेजेगा. वे पुरुष वहां जाकर जमीन खोदेंगे. उस समय राजा के सत्व से शासन देव भी वहां उपस्थित रहेंगे. जमीन को थोड़ा खोदने पर वह दिव्य प्रतिमा निकलेगी. उस प्रतिमा के साथ उदायन का आज्ञालेख भी मिलेगा. वे पुरुष बड़ी भक्ति और श्रद्धा से उसका पूजन करेंगे. स्त्रियां रास गाकर बाजे बजाकर भक्ति करेगी. उस प्रतिमा के सामने सतत नृत्य संगीत होता रहेगा. वे दक्ष पुरुष मूर्ति को रथ पर आसीन करके पाटन की सीमा पर ले आवेंगे. प्रतिमा के आगे की खबर सुन कर वह राजा चतुरंगी सेना और बड़े संघ के साथ उत्सव पूर्वक उसके सामने जायगा. बाद में वह अपने हाथों से प्रतिमा को रथ से निकाल कर हाथी पर आरूढ़ करेगा और बड़े उत्सव के साथ नगरप्रवेश कराएगा. उस प्रतिमा के लिये वह एक विशाल स्फटिक पाषाण का मन्दिर बनवाएगा. वह मन्दिर अष्टपद पर्वत के मन्दिर की तरह अत्यन्त भव्य होगा. उस में बड़े उत्सव के साथ प्रतिमा को प्रतिष्ठित करेगा. इस प्रकार से स्थापित की गई प्रतिमा के प्रभाव से उस राजा की कीर्ति, यश, प्रभाव, संपत्ति खूब बढ़ेगी. गुरुभक्ति से वह राजा भारतवर्ष में तेरे पिता की तरह ही प्रभावशाली होगा.' त्रिषष्ठि० पर्व० दसवां, पृ० २२८-२३१.

१. सुवर्णगुलिका के निमित्त चण्डप्रद्योत के साथ हुए युद्ध की किंवदन्ती में भी प्राचीन प्रमाण है, ऐसा एक सूत्र के सूचन के आधार पर अनुमान होता है. भगवती सूत्र जितने ही प्राचीन सूत्र प्रश्नव्याकरण में जिन स्त्रियों के लिये युद्ध हुए थे उनके नाम दिये हैं, उनमें सुवर्णगुलिका का भी एक नाम आता है. वह पाठ यह है :

'मेहुणमूलं च सुव्वए तत्थ-तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा-सीयाए, दोवइए कए, रुप्पिणीए पउमावइए, ताराए, कंचणाए रत्तसुभद्दाए, अहिन्नियाए, सुवण्णगुलियाए, किन्नरीए, सुरूवविज्जुमतीए, रोहिणीए अन्नेसुय एवमादिएसु वहवो महिलाकएसु सुव्वंति अइक्कंतासंगामा.'

अर्थ—मैथुन मूलक संग्राम, जो विभिन्न शास्त्रों में सुने जाते हैं. जो युद्ध नरसंहार करने वाले हैं, जैसे सीता और द्रौपदी के लिये, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, कंचना, रक्तसुभद्रा, अहल्या, सुवर्णगुलिका, किन्नरी आदि के लिये युद्ध हुए हैं.

मूल सूत्र में आये हुए उपर्युक्त उदाहरणों की व्याख्या टीकाकार ने संक्षेप में की है. इन स्त्रियों के विषय में दूसरे ग्रंथों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक विलक्षण परम्परासाम्य

जिस प्रकार जैन-ग्रंथों में वीतिभय के उदायन और चन्दन काष्ठ की मूर्ति विषयक वृतान्त मिलता है, उसी प्रकार बौद्ध ग्रंथों में भी कोशाम्बी के उदायन और बुद्ध मूर्ति विषयक वृतान्त मिलता है. बौद्ध श्रमण यवनचंक अथवा व्हेतत्संग जब भारत में आया था, उस समय यह कथा बौद्धों में भी बहुत प्रचलित थी, उसने अपने प्रवासवृतान्त में कोशाम्बी का वर्णन करते हुए लिखा है कि—'कोशाम्बी नगर में एक पुराना महल है. उसमें ६०० फीट ऊंचा एवं विहार है: इस विहार में चन्दनकाष्ठ की बुद्धप्रतिमा है. उस बुद्धप्रतिमा पर पाषाण का बना हुआ छत्र है. कहा जाता है कि यह कृति उदायन राजा की है, यह मूर्ति बड़ी प्रभावशालिनी है. इसमें दैवी तेज रहा हुआ है और यह समय-समय पर प्रकाश देती रहती है. इस मूर्ति को इस स्थान से हटाने के लिये राजाओं ने प्रयत्न किये थे और उठाने के लिये कई आदमी लगाये थे लेकिन उसे कोई हिला भी नहीं सका. तब वे लोग उस मूर्ति की प्रतिकृति बनाकर पूजा करने लगे और उसमें मूल मूर्ति की-सी श्रद्धा रखने लगे.'[1]

इसी लेखक ने अपने प्रदेश के पिमा शहर में इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति का भी उल्लेख किया है. वह लिखता है— 'यहां—पिमा शहर में भगवान् बुद्ध की खड़ी आकृति में बनी हुई चन्दनकाष्ठ की एक विशालमूर्ति है, यह २० फीट ऊंची है और बड़ी चमत्कारिक है. इसमें से प्रकाश निकलता रहता है, रुग्ण जन अगर सोने के बरख में उसकी पूजा करें तो उनका रोग मिट जाता है. ऐसी यहां के लोगों की धारणा है. जो लोग अन्तःकरण पूर्वक इसकी प्रार्थना करते हैं, उनका मनोवांछित सिद्ध हो जाता है. यहां के लोग कहते हैं कि—जब बुद्ध जीवित थे उस समय कौशाम्बी के राजा उदायन ने इस मूर्ति को बनवाया था. जब भगवान् बुद्ध का निर्वाण हो गया तब यह मूर्ति अपने आप आकाश में उड़कर इस राज्य के उत्तर में आये हुए 'हो-लो लो-किय' नाम के शहर में आकर रही. यहाँ के लोग धनिक और बड़े-वैभवशाली थे और मिथ्यामत में अनुरक्त थे. उनके मनमें किसी भी धर्म के प्रति मान-सम्मान नहीं था. जिस दिन से यह मूर्ति आई उस दिन से देवी चमत्कार होने लगे, लेकिन लोगों का ध्यान इस मूर्ति की और नहीं गया.

उसके बाद एक अर्हत् वहाँ आया और वन्दन कर उस मूर्ति की पूजा करने लगा. उस अर्हत् की विचित्र वेष-भूषा देख कर लोग डर गये और उन्होंने राजा को जाकर सूचना दी. राजा ने आज्ञा दी कि उस पुरुष को धूल और रेती से ढंक दो. लोगों ने राजाज्ञा के अनुसार उस अर्हत् की बड़ी दुर्दशा की और उसे धूल और रेती के ढ़ेर में दबा दिया. उसे अन्न जल भी नहीं दिया. किन्तु एक व्यक्ति को, जो उस मूर्ति की पूजा करता था, लोगों पर बड़ा क्रोध आया, उसने छुप कर उस अर्हत् को भोजन दिया. जाते समय अर्हत् उस व्यक्ति से बोला—'आज से सातवें दिन इस नगर पर रेती और धूल की वर्षा होगी जिससे सारा नगर रेती और धूल में दब जायगा. कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं रह सकेगा. अगर तुझे प्राण बचाना हो तो तू यहाँ से भाग जा. यहाँ के लोगों ने मेरी जो दुर्दशा की है उसी के फलस्वरूप यह नगर भी धूलिवर्षा से नष्ट हो जायगा. इतना कह कर अर्हत् अदृश्य हो गया. तब वह आदमी शहर में आकर अपने सगे संबंधियों को कहने लगा कि आज से सातवें दिन यह नगर धूलिवर्षा से नष्ट हो जायगा. इस बात पर लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे. दूसरे दिन एक बड़ी आँधी आई और वह नगर की सारी गन्दी धूल उड़ाकर आकाश में ले गई. बदले में कीमती पत्थर आकाश से गिरे. इस घटना से तो लोग उसकी और हँसी उड़ाने लगे.

किन्तु उसे अर्हत् के वचन पर विश्वास था. उसने गुप्त रूप से नगर से बाहर निकलने के लिये रास्ता बनाया और वह जमीन में छुपा रहा. ठीक सातवें दिन धूल की भयंकर वर्षा हुई और सारा नगर धूल में दब गया. वह व्यक्ति सुरंग

में जो भी परिचय मिला है, उसे उन्होंने अपनी टीका में उद्धृत किया है. उसमें सुवर्णगुलिका के लिये उदायन का चण्डप्रद्योत के साथ हुए युद्ध की परम्परा अति प्राचीन और सत्य पर आधारित है.

१. ह्वेनत्संग भी अपने साथ इस मूर्ति की प्रतिकृति बनाके ले गया था. देखो Beals Record of Western Countries, Book I, पृ० २३४ और प्रस्तावना पृ० २०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से नगर के बाहर निकला और उत्तर की ओर चला. चलते-चलते वह पिमा शहर पहुँचा और वहीं रहने लगा. बाद में मूर्ति भी वहाँ से आकाश मार्ग से उड़कर इस शहर में आई. वह व्यक्ति उस मूर्ति की पूजा करने लगा. पुराने ग्रंथों में लिखा है कि जब शाक्यधर्म का अन्त हो जाएगा तब यह मूर्ति नाग लोक में चली जाएगी. आज भी 'हो लो-लो किअ' शहर की जगह बहुत बड़ा मिट्टी का ढ़ेर पड़ा हुआ है.[1]

यवनचंग और दिव्यावदान

यवनचंग के द्वारा लिखी गई उपर्युक्त घटना का मूल क्या है, यह मैं नहीं जान सका किन्तु 'दिव्यावदान' में कुछ घटनाएँ देखने को मिलीं. यवनचंग और दिव्यावदान इन दोनों की कथा का जैनग्रंथों की उदायन कथा के साथ मिलान करने पर दोनों में जो साम्य मुझे दिखाई दिया वह आश्चर्यजनक है. पाठकों की जानकारी के लिये दिव्यावदान के रुद्रायणावदान नामक प्रकरण में आई हुई वह कथा देता हूँ :

राजा बिम्बिसार के समय, जब भगवान् बुद्ध राजगृह में रहते थे तब दो महानगर प्रसिद्ध थे—एक पाडलिपुत्र और दूसरा रोरुक. रोरुक नगर में रुद्रायण नामक राजा राज्य करता था. उसकी चन्द्रप्रभा नामक की रानी थी. शिखंडी नामका पुत्र था और हिरु, भिरु नामक के दो महामंत्री थे. राजगृह में बिंबिसार राजा था, उसकी वैदेही नामक की रानी और अजातशत्रु नामका पुत्र था. वर्षकार नामक उसका महामंत्री था. उस समय राजगृह के कुछ व्यापारी रोरुक नगर गये और वहाँ के राजा रुद्रायण से मिले. बिम्बिसार से मैत्री बढ़ाने की दृष्टि से राजा रुद्रायण ने व्यापारियों के साथ अपने राज्य के बहुमूल्य रत्न भेजे. उसके जबाब में राजा बिम्बिसार ने भी अपने यहाँ बनने वाले बहुमूल्य वस्त्रों की पेटियाँ भेजीं. एक बार रुद्रायण ने अपने राज्य के कुछ बहुमूल्य रत्न बिम्बिसार को भेजे. बदले में उसने भगवान् बुद्ध का भव्य चित्र तैयार करवा कर रुद्रायण को भेजा. साथ ही रुद्रायण को बौद्ध धर्मी बनाने के लिये महाकात्यायण नामक भिक्षुक व शैला नाम की भिक्षुणी को भेजा. भिक्षु और भिक्षुणी रुद्रायण के महल में रहे और उसे बुद्धधर्म का उपदेश करने लगे. राजा धीरे-धीरे बुद्ध का अनुयायी बन गया.

राजा रुद्रायण वीणा बजाने में बहुत कुशल था और रानी नृत्य करने में. एक दिन रानी नृत्य कर रही थी और राजा वीणा बजा रहे थे. नृत्य करती हुई रानी में मृत्युकाल के कुछ चिह्न राजा को दिखाई पड़े. राजा ऐसे चिह्न देख सहसा घबरा उठा और उसके हाथ से वीणा छूट गई. वीणा के एकाएक बन्द हो जाने से रानी चौंक गई और राजा से बोली स्वामी—'क्या मेरा नृत्य खराब था जिससे आपने वीणा बजाना ही बन्द कर दिया ? राजा ने कहा—'ऐसी बात नहीं है, किन्तु तुम्हारी शीघ्र मृत्यु के कुछ चिह्न देख कर मैं घबरा गया और वीणा हाथ से छूट गई. आज से सातवें दिन तेरीमृत्यु होगी.' यह सुन रानी बोली—'अगर ऐसा ही है तो मैं भिक्षुणी बनना चाहती हूँ.' राजा ने इस शर्त पर भिक्षुणी बनने की आज्ञा दी कि—अगर तुम मर कर देव बनो तो मुझे आकर दर्शन देना. रानी ने राजा की यह बात मान ली और वह शैला भिक्षुणी के पास प्रव्रजित हो गई. सातवें दिन वह मरण संज्ञा की भावना करती हुई मरी और चातुर्महाराजिक देवलोक में देवकन्या के रूप में उत्पन्न हुई. वह देवकन्या उसी रात्रि में राजा के शयनयक्ष में प्रकट हुई. रानी को देखकर उसे आलिंगन करने के लिये राजा ने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाये और पास आने का आग्रह किया. तब देवकन्या बोली—'महाराज ! मैं मर कर देवकन्या बनी हूँ. अगर आप मुझ से समागम करना चाहते हैं तो आप भी प्रव्रज्या ग्रहण करें. मृत्यु के बाद जब आप देव बनेंगे तभी मुझ से समागम कर सकेंगे. इतना कह कर वह देवकन्या अदृश्य हो गई. देवकन्या के अदृश्य होने पर राजा विचार में पड़ गया. उसने सारी रात संकल्प-विकल्पों में व्यतीत की. अन्त में उसने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया. प्रातः भगवान् बुद्ध के समीप प्रव्रज्या के लिये राजगृह की ओर चल पड़ा. जाते समय उसने अपने पुत्र शिखण्डी को राज्यगद्दी पर बैठा दिया. दोनों मन्त्रियों को राज्य की सारी व्यवस्था करने

---

१. बिल की उपरोक्त पुस्तक भा० २ पृ० ३२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को कहा गया. राजगृह पहुँच कर उसने भगवान् बुद्ध के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और बुद्ध का शिष्य बन गया.

इधर शिखण्डी अपने दो दुष्ट मंत्रियों की संगति से अनीति के मार्ग पर चलने लगा और प्रजा को भी सताने लगा. उसने दो पुराने अच्छे मंत्रियों को अलग कर दिया. कुछ व्यापारियों से जब इस वृद्ध भिक्षु को अपने पुत्र के अन्याय का पता लगा तो वह उसे समझाने के लिये रोरुक नगर की ओर चल पड़ा. जब दोनों दुष्ट मंत्रियों को इस बात का पता चला तो उन्होंने उसे मार्ग में ही रोकना अच्छा समझा. उन्होंने शिखण्डी से कहा—'सुना है कि वृद्ध भिक्षु यहाँ आ रहा है.' इस पर शिखण्डी ने कहा—'अब तो वह प्रव्रजित हो गया है, भले आये' इस पर मंत्रियों ने कहा—जिस व्यक्ति ने एक दिन भी राज्यश्री का अनुभव कर लिया हो वह पुनः राज्य पाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता. इस पर शिखण्डी ने कहा—अगर वे पुनः राज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो मैं उन्हें अपना राज्य दे दूँगा. मंत्रियों ने उसे कहा—क्या प्राप्त राज्य को इस प्रकार खो देना बुद्धिमत्ता है इस तरह मंत्रियों ने कई तरह से समझा-बुझाकर वृद्ध को राज्य में न आने देने के लिये शिखण्डी को राजी किया. यहाँ तक कि दुष्ट मंत्रियों की बातों में आकर उसने कुछ घातक पुरुषों को भेज कर अपने पिता का शिरच्छेद करवा दिया.

पिता की मृत्यु के बाद वह राजा प्रजा पर खूब अत्याचार करने लगा. एक समय शिखण्डी अपनी मण्डली के साथ नगरपरिक्रमा के लिये निकला. मार्ग में उसे भिक्षु कात्यायन मिला. कात्यायन भिक्षु को देखकर शिखण्डी अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने उस पर एक-एक मुट्ठी धूल डालने की प्रजाजनों को आज्ञा दी. राजाज्ञा से लोगों ने उस भिक्षु पर इतनी अधिक धूल डाली कि वह उसी में दब गया.

पुराने हिरु, भिरु नाम के मंत्रियों को जब इस बात का पता चला तो वे उस भिक्षु के पास आये और उसे मिट्टी से बाहर निकाला. भिक्षु ने मंत्रियों से कहा—'अब इस नगर के विनाश का समय आ गया है. आज से सातवें दिन धूलि-वृष्टि होगी जिससे सारा नगर नष्ट हो जायगा. अगर तुम अपना बचाव करना चाहते हो तो अपने घर से नदी के तट तक एक सुरंग बनवा लेना और नदी के तीर पर एक नाव भी तैयार रखना. जब नगरप्रलय का समय आयगा उस समय तुम नाव पर बैठ कर अन्यत्र चले जाना. नगरप्रलय में प्रथम दिन बड़ी आंधी आएगी. वह आँधी नगर की सारी दुर्गन्धित धूलि को आकाश में उड़ाकर ले जाएगी. दूसरे दिन फूलों की वर्षा होगी. तीसरे दिन वस्त्रों की वर्षा होगी. चौथे दिन चांदी बरसेगी. पाँचवें दिन सोने की वर्षा होगी. छठे दिन रत्न बरसेंगे और सातवें दिन धूल की वृष्टि होगी जिससे सारा नगर भूमिसात् हो जायगा.'

कात्यायन की भविष्यवाणी के अनुसार सातवें दिन एक भयंकर आंधी आई जिससे सारे नगर की धूल उड़ गई. मंत्रियों को भिक्षु की भविष्यवाणी पर विश्वास हो गया. उन्होंने अपने घर से नदी तक सुरंग बना ली. छठे दिन जब रत्नों की वर्षा हुई तो उन्होंने नाव को रत्नों से भर लिया और उसमें बैठकर अन्य देश चले गये. वहां हिरु मंत्री ने हिरु-कच्छ और भिरु मंत्री ने भिरुकच्छ नाम का देश बसाया. कात्यायन भिक्षु नगर के नष्ट हो जाने पर लम्बकपाल, श्यमांक वोक्काण आदि देश होता हुआ सिन्धु नदी के किनारे पर आ पहुँचा वहां से मध्यदेश आया और श्रावस्ती नगरी में, जहां भगवान् बुद्ध अपने संघ के साथ रहते थे, आकर उनके संघ में मिल गया.

जहां तक मुझे स्मरण है, यह कथा दक्षिण के हीनयान संप्रदाय के पाली साहित्य में कहीं भी नहीं मिलती. किन्तु उत्तर के महायान संप्रदाय के संस्कृत एवं टिबेटियन साहित्य में उपलब्ध होती है. 'दिव्यावदान' के सिवा क्षेमेन्द्र के 'अवदान-कल्पलता' में भी यह कथा आती है. अस्तु, यहां इतना ही बताना अभिप्रेत है कि चीनी यात्री व्हेएन सींग [ह्यूवत्सौंग] द्वारा वर्णित 'हो-लो लो-किअ' नगर के नाश की और दिव्यावदान के 'रोरुक' नगर के नाश की कथा में कहीं अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता. इससे यह मालूम होता है कि इन दोनों कथाओं का मूल स्रोत एक ही है. इतना ही नहीं, 'दिव्यावदान' के 'रोरुक' नगर का ही चीनी उच्चारण 'हो-लो-लो-किअ' हो ऐसा लगता है. थोमसवाटर्स इस नाम की व्युत्पत्ति O-Lao-Lo-Ka (Rallaka?) इस प्रकार करते हैं. 'बिल' महाशय Ho-Lo-Lo-Kia ऐसा करते हैं. 'बिल'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाशय इसी नामका दूसरा उच्चारण इस प्रकार देते हैं Ragha or Ragham, or Perhaps ourgha और 'वाटर्स' महाशय उसका संस्कृत उच्चारण 'रल्लक' देते हैं. किन्तु दोनों उच्चारणों की अपेक्षा दिव्यावदान का रोरुक उच्चारण ही भाषाशास्त्र की दृष्टि से अधिक संगत लगता है. अतः ये दोनों नगर एक ही थे ऐसा उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है. किन्तु यहाँ पर भौगोलिक प्रश्न उपस्थित होता है. दीघनिकाये नामक पाली आगम के 'महागोविन्द-सुत्तन्त' में और 'जातकट्ठकथा' में रोरुक नगर को 'सौवीर' देश की राजधानी बताया है. प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान्—ह्रीस-डेविड्स ने हिन्दुस्तान के नक्शे में सौवीर देश का स्थान कच्छ की खाड़ी के पास में बताया है, जब कि हुएनसौंग हो-लो-लो-किअ नगर को खोतान प्रदेश [मध्यप्रदेश] में बताते हैं. प्रादेशिक दृष्टि से दोनों के स्थल अलग-अलग होने से इन दोनों नगरों को एक मानने में यह सबसे बड़ी बाधा उपस्थित होती है. दीघनिकाय में जिस सौविर देश का उल्लेख आया है उसका अभी तक स्थान निश्चित नहीं हो पाया है. वैदिक पुराणों एवं जैनग्रंथों में सौवीर देश का नाम आता है. जैन ग्रंथों में प्रायः 'सिन्धु-सौवीर' ऐसा जुड़ा हुआ नाम आता है. यह सौवीर बुद्ध का ही सौवीर है तो यह सिन्धु नदी के आस-पास बसा हुआ होना चाहिए. किन्तु जैन और बौद्धों का सौवीर एक ही है ऐसा मालूम नहीं होता. क्योंकि जैन सिन्धु सौवीर की राजधानी वीतिभय अथवा वीतभय मानते हैं, जबकि बौद्ध ग्रंथों में सौवीर की राज-धानी रोरुक नगर बतलाई गई है. बौद्ध ग्रंथों में भी अलग-अलग वाचनाओं में इस शब्द के विषय में कई पाठान्तर हैं. जैसे—जातकट्ठकथा में 'रोरुवनगर' अथवा 'रोरुवम नगर' ऐसे दो पाठ आते हैं. 'दीघनिकाय' की सिंहली वाचना में 'रोरुक' और बरमी वाचना में 'रोरुण' पाट आता है. इतना ही नहीं, देश के नामों में भी पाठान्तर है. जैसे दीघनिकाय में 'सौवीर' के स्थान पर 'सोचिर' पाठ आता है और जातकट्ठकथा में 'शिबिरठे' पाठ है. लिपिकों के प्रमाद और अज्ञान से ऐसे अशुद्ध पाठों का लिखा जाना असंभव नहीं है. ऐसे पाठभेदों से ऐतिहासिक तथ्य निकालने में कितनी बड़ी कठिनाई आती है यह तो पुरातत्त्वज्ञ ही जानते हैं. टीबेटियन साधनों से तो 'रोरुक' नगर पालिसाहित्य प्रसिद्ध कोलिय क्षत्रियों का 'राम ग्राम' हो ऐसा 'राकहील' का अनुमान है.[१] इससे यह पता लगता है कि सौवीर और रोरुक नगर का स्थान अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है. अगर निश्चित हुआ मान भी लें तो भी दिव्यावदान का 'रोरुक' और दीघ-निकाय का 'रोरुक' दोनों अलग हैं, ऐसा मानने में कोई बाधा भी नहीं है. साथ ही दिव्यावदान वाला रोरुक हिन्दुस्तान के बाहर था ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं. रोरुक नगर का जब नाश हुआ था तब कात्यायन भिक्षु मध्यदेश में आने के लिये निकला मार्ग में लम्बाक, स्यामाक, और वाक्कणादि देशों को पार करता हुआ सिन्धु नदी के किनारे पर आया. वहां से नदी को पार कर अनेक स्थलों पर घूमता-घामता श्रावस्ती आ पहुँचा था. पूर्वग्रंथों में लम्बाक-स्यामाक और वोक्कणादि प्रदेश हिन्दुस्तान के बाहर अनार्य प्रदेश माने जाते थे. इनका सिन्धु नदी के उस पार होना भी उन प्रदेशों के अनार्य होने का सबल प्रमाण है. दिव्यावदान की वार्ता के आधार पर से हम यह देखते हैं कि रोरुक नगर में रत्नों की पैदाइश अधिक होती थी और वस्त्रों की कम.[२] इसके विपरीत भारत में ऐसा कोई प्रदेश दृष्टिगोचर नहीं होता जहाँ केवल रत्न ही रत्न पैदा होते हों, वस्त्र नहीं. किन्तु मध्य एशिया में ऐसे भी प्रदेश थे जहां वस्त्र नहीं पैदा होते थे.[१] इन कारणों से प्रमाणित होता है कि रोरुक नगर हिन्दुस्तान के बाहर था और वह हुएनसौंग का वर्णित 'हो-ला-लो-किअ' का ही दूसरा नाम था.

बौद्ध और जैन कथा में समानता

हुएनसौंग और दिव्यावदान की कथा का साम्य हम ऊपर देख आये हैं. किन्तु बौद्ध और जैन कथा में जो साम्य मिलता है वह और भी आश्चर्यजनक है. हुएनसौंग और दिव्यावदान वर्णित कथा में तो केवल रोरुक नगर के नाश का ही साम्य मिलता है किन्तु दिव्यावदान की कथा के साथ जैन कथा का कई बातों में साम्य दृष्टिगोचर होता है. जिसकी चर्चा अब हम करेंगे.

१. देखो—Rockhills life of Buddha. P. 145.
२. 'देवो रत्नाधिपतिः. स राजा वस्त्राधिपतिः. तस्य रत्नानि दुर्लभानि' —दिव्यावदान, पृ० ५४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोरुक नगर के नाश और जैन कथा में वर्णित वीतिभय के नाश के वर्णन में हुएनसौंग, अवदान और जैन ग्रंथ समान हैं. तीनों ने नगरनाश का कारण धूलि-वर्षा ही बताया है. जैन कथा में 'उदायन' और दिव्यावदान में 'उद्रायण' अथवा 'रुद्रायन' की मृत्यु का कारण उसका उत्तराधिकारी माना गया है. जैन ग्रंथकार इसकी मृत्यु विषप्रयोग से और बौद्ध कथाकार शस्त्रप्रयोग से दुष्ट अमात्यों द्वारा होना लिखते हैं. जैन कथाकार उद्रायण का उत्तराधिकारी उसके भानजे केशीकुमार को मानते हैं जबकि बौद्ध कथाकार उसके पुत्र शिखण्डी को उसका उत्तराधिकारी मानते हैं.

साथ ही शिखण्डी और उसके मंत्रियों का आपस में जो रुद्रायण विषयक वार्तालाप हुआ है और हेमचन्द्राचार्य की इसी कथा में केशीकुमार और उनके मंत्रियों के बीच उदायन विषयक हुए वार्तालाप में जो भावसाम्य दृष्टिगोचर होता है, उसे समझने के लिये दोनों ग्रंथों के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

देव, श्रूयते वृद्धराजा आगच्छतीति. स कथयति—प्रव्रजितोऽसौ. किमर्थं तस्यागमनप्रयोजनमिति ? तौ कथयतः देव, येनैकदिवसमपि राज्यं कारितम्, स विना राज्येनाभिरंस्यत इति कुत एतत् ? पुनरप्यसौ राज्यं कारयितुकाम इति. शिखण्डी कथयति—यद्यसौ राजा भविष्यति, अहं स एव कुमारः, कोऽनुविरोध इति ? तौ कथयतः—देव, अप्रतिरूपमेतत्. कथं नाम कुमारामात्यपौरजनपदैरञ्जलि—सहस्रैर्नमस्यमानेन राज्यं कारयित्वा पुनरपि कुमारवासेन वस्तव्यम् ? वरं देशपरित्यागो न तु कुमारवासेन वासम्——स ताभ्यां विप्रलब्धः कथयति—किमत्र युक्तम् ? कथं प्रतिपत्तव्यमिति ? तौ कथयतः—देव, प्रघातयितव्योऽसौ. यदि न प्रघात्यते, नियतं दुष्टामात्यविग्राहितो देवं प्रघातयतीति. स कथयति, कथं पितरं प्रघातयामीति ? तौ कथयतः—न देवेन श्रुतम् ?

पिता वा यदि वा भ्राता, पुत्रो वा स्वांगनिःसृतः, प्रत्यनीकेषु वर्तेत कर्तव्या भूमिवर्धना (१).
(दिव्यावदान पृ० ४७८)

इन्हीं भावों को आचार्य हेमचन्द्र ने निम्न शब्दों में प्रकट किया है :

ज्ञात्वोदायनमायातं केश्यमात्यैर्भणिष्यते, निर्विण्णस्तपसामेष नियतं तव मातुलः।
ऋद्धं राज्यं ह्यैन्द्रपदं तत्त्वक्त्वानुशयं दधात्, नूनं राज्यार्थमेवागाद्विश्वसीर्मा स्म सर्वथा।
केशी वक्ष्यत्यसौ राज्यं गृह्णात्वद्यापि कोऽस्म्यहम्, गोपालस्य हि कः कोपो धनं गृह्णाति चेद्धनी।
वक्ष्यन्ति मंत्रिणः पुण्यैस्तव राज्यमुपस्थितम्, प्रदत्तं न हि केनापि राजधर्मोऽपि नेदृशः।
पितुर्भ्रातुर्मातुलाद्वा सुहृदो वापरादपि, प्रसह्याप्याहरेत् प्राज्यं तद्दत्तं को हि मुञ्चति।
तैरेवमुदितोऽत्यर्थं त्यक्त्वा भक्तिमुदायने, केशी प्रदास्यति किं कार्यं दापयिष्यन्ति ते विषम्।

महावीरचरित्र पृ० १५८.

बौद्ध ग्रंथों में रुद्रायण की रानी का नाम चन्द्रप्रभा लिखा है जब कि जैनों ग्रंथों में प्रभावती नाम आता है. दोनों में भी 'प्रभा' शब्द का प्रयोग हुआ है जो अधिक ध्यान देने योग्य है. इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि राजा का वीणा बजाना, रानी का नृत्य, नृत्य करती हुई रानी में मृत्यु के चिह्न दिखाई देना, रानी की प्रव्रज्या, प्रव्रज्या की आज्ञा देने में मृत्यु के बाद वापिस आने की शर्त राजा के द्वारा रखना, रानी की प्रव्रज्या और उसकी मृत्यु के बाद पुनः राजा को उपदेश देने के लिये आना आदि घटनाओं का जो दोनों ग्रंथों में साम्य मिलता है, वह अधिक आश्चर्यजनक है. दिव्यावदान और हेमचन्द्र के महावीर चरित्र में इस विषय का जो वर्णन आया है, वह पाठसाम्य की दृष्टि से पाठकों के सामने रखता हूँ.

रुद्रायणो राजा वीणायां कृतावी, चन्द्रप्रभा देवी नृत्ये. यावदपरेण समयेन रुद्रायणो राजा वीणां वादयति, चन्द्रप्रभा देवी नृत्यति. तेन तस्या नृत्यन्त्या विनाशलक्षणं दृष्टम्. स तामितश्चामुतश्च निरीक्ष्य संलक्षयति-सप्ताहस्यात्यात्कालं करिष्यति. तस्य हस्ताद्वीणा स्रस्ता, भूमौ निपतिता. चन्द्रप्रभा देवी कथयति—देव मा, मया दुर्नृत्यम् ? देवी, न त्वया दुर्नृत्यम्. अपि तु मया तव नृत्यन्त्या विनाशलक्षणं दृष्टम्, सप्तमे दिवसे तव कालक्रिया भवतीति. चन्द्रप्रभा देवी पादयोर्निपत्य कथयति-देव यद्येवम्, कृतोपस्थानाहं देवस्य यदि देवो अनुजानीयात्, अहं प्रव्रजेयमिति. स कथयति चन्द्रप्रभे !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयतोऽनुजानामि. यदि तावत्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्करोषि, एषा एव दुःखान्तः. अथ सावशेषसंयोजना कालं कृत्वा देवेषूपपद्यसे, देवभूतया ते ममोपदर्शयितव्यमिति. सा कथयति—देव, एवं भवत्विति. (दिव्यावदान, पृ० ४७०)

यही वर्णन आचार्य हेमचन्द्र के महावीरचरित्र में इस प्रकार है :

तामन्यदार्चामर्चित्वा प्रमोदेन प्रभावती, पत्या समेता संगीतमविगीतं प्रचक्रमे।
तानौघानुगतश्रव्यं व्यक्तव्यंजनधातुकम्, व्यक्तस्वरं व्यक्तरागं राजा वीणामवादयत्।
व्यक्तगांहारकरणं सर्वांगाभिनयोज्ज्वलम्, ननर्त देव्यपि प्रीता लास्यं ताण्डवपूर्वकम्।
राजान्यदा प्रभावत्या न ददर्श शिरः क्षणात्, नृत्यन्तं तत्कबन्धं तु ददर्शाजिकबन्धवत्।
अरिष्टदर्शनेन द्राक् क्षुभितस्य महीपतेः, तदोपसर्पन्निद्रस्येवागलत् कंबिका करात्।
अकाण्डताण्डवच्छेदकुपिता राज्ञ्यथावदत्, तालच्युतास्मि किमहं वादनाद्विरतोऽसि यत्।
इत्थं पुनः पुनः पृष्टः कम्बिकापातकारणम्, तत्तथाख्यन्महीपालो बलीयान् स्त्रीग्रहः खलु।
राज्ञ्यूचे दुर्निमित्तेनामुनाल्पायुरहं प्रिय, आजन्मार्हद्धर्मवत्या मृत्युरप्यस्तु नास्ति भीः।
प्रत्युतानन्दहेतुर्मे दुर्निमित्तस्य दर्शनम्, तज्ज्ञापनाय भवति यत्सर्वविरतौ मम।
अनिमित्तद्वयाख्यातात्पायुषः समयोचिते, प्रव्रज्याग्रहणे मेऽद्य प्रत्यूहं नाथ मा कृथाः।
एवमुक्तः सनिर्बन्धमभ्य-धाद्वसुधाधवः, अनुतिष्ठ महादेवि यत्तुभ्यमभिरोचते।
देवत्वमाप्तया देवि बोधनीयस्तयान्वहम्, स्वर्गसौख्यान्तरायेऽपि सोढव्यो मत्कृते क्षणम्।

उपरोक्त अवतरणों से जैन और बौद्ध लेखों में कितनी बड़ी अभिन्नता है यह स्पष्ट मालूम होता है. मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि दिव्यावदान के उद्रायण नाम के बदले में जैन नाम उदायन या जैन नाम उदायन के बदले में बौद्धनाम उद्रायण लिपि या पाठभेद के कारण ही है. क्योंकि बौद्धों और जैनों के ग्रन्थों में इस नाम के कई पाठभेद मिलते हैं. दिव्यावदान में रुद्रायण ही सर्वत्र प्रयुक्त हुआ है लेकिन कई प्रतियों में 'रुद्रायण' के स्थान में 'उद्रायण' का भी प्रयोग हुआ है. इसी प्रति में एक जगह तो 'उद्रायण' ही पाठ आया है—

मुक्तो ग्रन्थैश्च योगैश्च शल्यैर्नीवरणैस्तथा, अद्याप्युद्रायणो भिक्षू राजधर्मैर्न मुच्यते।—दिव्यावदान पृ० ४८०.

क्षेमेन्द्र के अवदानकल्पलता में सर्वत्र उद्रायण का ही प्रयोग हुआ है. उदाहरणार्थ :

बभूव समये तस्मिन् रौरुकाख्ये पुरे नृपः, श्रीमानुद्रायणो नाम यशश्चन्द्रमहोदधिः।
कदाचिद्दिव्यरत्नांकं कवचं कांचनोज्ज्वलम्, प्राहिणोद् बिम्बिसाराय सारमुद्रायणो नृपः।
बिम्बिसारस्य हस्तांकलेखामुद्रायणो नृपः, उद्रायणस्य नृपतेरार्यः कात्यायनोऽथ सः।

—अवदानकल्पलता पृ० २५६

इन अवतरणों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि बौद्धग्रन्थों में असली नाम रुद्रायण नहीं किन्तु 'उद्रायण' ही था. यह नाम जैन ग्रन्थकारों का भी सम्मत है. भगवतीसूत्र और आवश्यक चूर्णि में 'उद्दायण' भी पाठ आता है. जिसका संस्कृत रूप 'उद्रायण' होता है. जैन संस्कृत टीकाकारों ने इसी शब्द को 'उादयण' के रूप में संस्कृत किया है.

जैन और बौद्ध कथा में कितना बड़ा साम्य है, यह हम ऊपर देख आये हैं. इस विलक्षण साम्य का मूल खोज निकालना कठिन कार्य है. इस कथा को किसने किससे उधार लिया है ? या उस समय उदायन विषयक स्वतंत्र आख्यान को जैन व बौद्धों ने अपने साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है ? जिसका निर्णय करना हमारी शक्ति के बाहर है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org